www.thearyasamaj.org

[redacted]

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015–17

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 73 अंक : 36
सृष्टि संवत् 1960853117
4 दिसम्बर, 2016
दयानन्दब्द 193
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष–73, अंक : 36, 1–4 दिसम्बर 2016 तदनुसार 20 मार्गशीर्ष सम्वत् 2073 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

गुरुकृत शिक्षा

–ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्रे अनुशिष्ट आगाम्।।

–ऋ० १०।३२।६

शब्दार्थ–अप्सु = प्रकृति की सूक्ष्म तन्मात्राओं में **निधीयमानम्** = रखे जाते हुए **अपगूळ्हम्** = अत्यन्त गूढ़ के विषय में **मे** = मुझे **देवानाम्** = देवों के **व्रतपाः** = व्रतरक्षक ने **प्र** + **उवाच** = उत्तम उपदेश किया है कि इन्द्रः = विद्यैश्वर्यसम्पन्न गुरु **हि** = ही **त्वा** = तुझे **अनुचचक्ष** = ठीक–ठीक बतलाएगा। हे **अग्रे** = ज्ञानिन् ! **तेन** = उससे **अनुशिष्टः** = शिक्षित होकर **अहम्** = मैं **आ** + **अगाम्** = आया हूँ।

व्याख्या–आत्मा क्या है ? कहाँ है ? यह जानने वाले जन संसार में अत्यन्त थोड़े हैं, किन्तु जो जानते हैं, क्या वे अपने–आप जान गये ? उन्हें भी किसी ने बताया ही है। जो विद्या किसी को सीखनी होती है, वह उस विद्या के आचार्य के पास जाता है। आचार्य जिज्ञासु की पात्रता की परीक्षा करके उसे यथायोग्य विद्या प्रदान करता है। आत्मविद्या का जिज्ञासु भी यदि ऐसे पूर्ण गुरु के पास जाए तो कुछ फल पाये। आत्मविद्या के आचार्य का लक्षण वेद ने बताया है कि वह '**देवानां व्रतपाः**' होना चाहिए। देव= विद्याभिलाषी जिज्ञासु को भी कहते हैं। आचार्य ऐसा हो जो शिष्य के व्रत = पवित्र ब्रह्मचर्य, ब्रह्मजिज्ञासादि शुभ व्रतों की रक्षा करे। उपनयन कराते समय शिष्य आचार्य से प्रार्थना करता है–'**मम व्रते ते हृदयं दधामि**' = मैं अपने व्रत में आपका मन लगाता हूँ। शिष्य का व्रत पूरा ही तब होगा, जब गुरु का मन भी उसमें होगा। ऐसा व्रतपा गुरु ही सत्य और यथार्थ आत्मोपदेश कर सकता है–'**निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच**' पञ्चतन्मात्राओं में अत्यन्त गूढ़ आत्मतत्त्व को देवों के 'व्रतपा' ने मुझे बताया है। वेद आत्मा का इशारा कर गया है। पञ्चतन्मात्र के बने हुए पञ्चभूतमय शरीर में आत्मा छिपा बैठा है। इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यह ज्ञान साधारण जन नहीं दे सकता। यम ने कहा है–

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमनुप्रमाणात्।।

–कठो० १।२।८

अनेक प्रकार से विचारणीय यह आत्मतत्त्व ओछे मनुष्य के बताने पर अच्छी तरह नहीं जाना जा सकता। ज्ञानी से भिन्न के बतलाने पर इसमें गति नहीं हो सकती। प्रमाणों = बह्य साधनों से यह अचिन्त्य है। तपः साधन से, शास्त्रविचार से आत्मा का कुछ आभास मिल जाता है, किन्तु ठीक–ठीक ज्ञान तो गुरु से ही मिलता है। जैसे प्राकृत पदार्थों के पर्यवेक्षण से आत्मज्ञान प्राप्त हुए सत्यकाम ने, गुरु के पूछने पर कहा था–'**अन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे। भगवाँस्त्वेव मे कामे ब्रूयात्। श्रुत्ँ होव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति।**' [छां० ४।९।२–३] महाराज ! मुझे मनुष्यों से भिन्न पदार्थों ने उपदेश किया है, किन्तु भगवान्= महाराज ही मेरी इच्छा के अनुसार उपदेश करें। मैंने आप–जैसे महात्मा पुरुषों से सुना है कि आचार्य से सीखी विद्या अभीष्ट फल प्राप्त कराती है।

श्वेताश्वतरजी [६।२३] ने तो गुरु की बड़ी महिमा कही है–

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

जिसकी भगवान् के समान गुरु में परा भक्ति है, उसी महात्मा को ये उपदिष्ट तत्त्व सूझते हैं।

गुरु का ज्ञानी होना आवश्यक है, जैसा कि वेद ने कहा–'**अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट्**' [ऋ० १०।३२।७]–अज्ञानी ज्ञानी से पूछता है।

जिस गुरु की कृपा से यह अमूल्य तत्त्व प्राप्त हुआ, उसका कीर्तन करना ही चाहिए, अन्यथा कृतघ्नता–दोष लगेगा।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

–व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

www.thearyasamaj.org

उपनिषदों से ही सच्ची शान्ति संभव है

-डा० ब. ध. धवन मकान नं. 359, सेक्टर 15-ए, चण्डीगढ़

"O upanisads ! you have been the solace of my life, and you will be the solace of my death". - Schopenhaur,

1. अतीव रोचक शैली से ब्रह्मविद्या के गम्भीर से गम्भीर विषयों का वर्णन करने के कारण विद्वत्समाज में उपनिषदों ने विशेष ख्याति प्राप्त की है। न केवल भारत में किन्तु विदेशों में उपनिषदों का बड़ा आदर हुआ है। प्राय: सभी सभ्य भाषाओं में इनका अनुवाद हो चुका है। 18वीं शती में दारा शिकोह ने चुनी हुई 50 उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया था। इस अनुवाद से एक फ्रैंच विद्वान् ने लेटिन भाषा में अनुवाद किया। इस टूटे फूटे अनुवाद को पढ़कर प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपन हार ने कहा था कि "उपनिषदें मानव-मस्तिष्क की सबसे ऊँची और पूर्ण रचना हैं। उपनिषद ज्ञान विश्व विचारधारा के पथ प्रदर्शन के लिए एक ज्योति है। न केवल जीवन में मुझे उपनिषदों से शान्ति प्राप्त हुई है, अपितु मृत्यु के उपरान्त भी वे मुझे शान्ति प्रदान करेंगी।"

2. उपनिषदों की संख्या वैसे तो 200 से भी ऊपर है, किन्तु प्रामाणिक और प्राचीन उपनिषदें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, एतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर हैं। अर्वाचीन उपनिषदों में एक मुक्तिकोपनिषद् है जिस में 108 उपनिषदों के नाम गिनाये गये हैं और कहा गया है कि मुक्ति के लिए अकेली माण्डूक्य उपनिषद् ही पर्याप्त है, उस अकेली से काम न चले तो ईशादि बृहादारण्यक पर्यन्त 10 उपनिषदें पढ़नी चाहिएं, उनसे भी सन्तोष न हो तो 32 और सीधी विदेह मुक्ति पानी हो तो 108 उपनिषदें पढ़ें।

3. ब्रह्मणग्रन्थों में जो कर्मकाण्ड परकाष्ठा को पहुंच गया था, उसकी प्रतिक्रिया हमें उपनिषदों में दिखाई देती है। उपनिषदों में यज्ञों को कमज़ोर नौका बताया है-"प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा:" (मुण्ड़कोपनिषद. 1.2.7), तथा ब्रह्मज्ञान को ही मुक्ति का उपाय कहा गया है। उपनिषदें संसार की थपेड़ों से अशान्त मनुष्य को बहिर्मुखता से हटा कर अर्न्तमुख करने वाली हैं तथा अनुपम शान्ति देने वाली हैं।

4. बाहरी धन-दौलत की चकाचौंध से मनुष्य को हटाती हुई ईशोपनिषद् कहती है कि यह सारा जगत् और जगत् की यह सारी धन-सम्पत्ति तो ईश्वर की है, तुम इसे बटोरने में क्यों लगे हो, इसका त्यागभाव से उपभोग करो, और इस सम्पत्ति का जो मालिक है उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करो-

ईशा वास्यमिंद सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद् धनम्।।१।।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।१५।।

उपनिषदों को प्रतिपाद्य है आत्मा और ब्रह्म और अन्तत: आत्मा द्वारा ब्रह्म को पा लेना या तदाकार हो जाना। उपनिषद् का ऋषि प्रकृति में सर्वत्र ब्रह्म को ही देखता है-

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जला-निति शान्त उपासीत।" (छांदोग्य उप. 3.14.1)

केनोपनिषत् कहती है कि संसार में जो भी विजय और समृद्धि दिखायी देती है, उसका कारण ब्रह्म ही है। इसे समझाने के लिए इस उपनिषद् में एक कथा आती है-

"ब्रह्मा ने अग्नि, वायु आदि सब देवों को विजयी बनाया। पर देव समझने लगे कि यह तो हमारी अपनी ही विजय है। ब्रह्म उनके इस अभिमान को समझ कर उनका गर्व चूर करने के लिए उनके संमुख प्रकट हुआ। उसने उनके सामने एक तिनका रख दिया। पर उस तिनके को न अग्नि जला सकी, न वायु उड़ा सका। अन्त में देवराज इन्द्र को उमा द्वारा यह ज्ञान हुआ कि यह तो ब्रह्म की ही महिमा है, जिसके कारण सब अग्नि वायु आदि देव शक्तिशाली बने हुए हैं।"

5. कठ उपनिषद् में नचिकेता यम के पास पहुंचकर उससे तीन वर मांगता है, जिनमें पहला वर आत्मज्ञान सम्बन्धी ही है। यम उसे तरह-तरह के प्रलोभन देता है। कहता है कि तू शतायु पुत्र-पौत्र मांग ले, बहुत से पशु मांग ले, सोना-चांदी मांग ले, भूमि का बड़ा भाग मांग ले, जितने वर्ष का जीवन चाहे मांग ले, पर आत्मज्ञान मत मांग। किन्तु नचिकेता अपनी मांग पर दृढ़ रहते हुए कहता है कि ये सांसारिक भोग तो इंन्द्रियों के तेज़ को जीर्ण ही करते हैं। धन-दौलत से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता, भोग-लिप्सा बढ़ती ही जाती है। इसलिए मुझे तो आत्मज्ञान ही चाहिए। इन कथानक द्वारा उपनिषद् यह प्रेरणा देती है कि मनुष्य को सांसारिक प्रलोभनों में न पड़ कर आत्मा को ही खोजना चाहिए। आगे यम नचिकेता को आत्मज्ञान देता है कि यह शरीर नाशवान् है, आत्मा ही अमर है, उसी का दर्शन करो-

अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतु: पश्यति वीताशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मन।। कठ. (1.2.20)

6. मुण्डक उपनिषद में कहा है कि दो विद्याएं जाननी चाहिएं-एक पराविद्या, दूसरी अपरा विद्या। चारों वेद, छहों वेदांग यह अपरा विद्या है, और परा विद्या वह है जिसमें अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। अक्षर ब्रह्म की महिमा वर्णित करते हुए कहा है कि जैसे मकड़ी अपने अन्दर से जाला तानती है और फिर अपने अन्दर समेट लेती है, जैसे पृथ्वी में से वृक्ष-वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं, या जैसे जीवित पुरुष के शरीर से केश और लोम उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अक्षर ब्रह्म से यह सारा विश्व उत्पन्न होता है। इस पराविद्या को अधिगत करना या अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार करना ही अन्तिम लक्ष्य है। माण्डूक्य उपनिषद् में इसी अक्षर ब्रह्म या ओंकार की चतुष्पाद् आत्मा के रूप में व्याख्या की गयी है-

"सर्व ह्येतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात्।"2

7. छांदोग्य उपनिषद् के छठे प्रपाठक में श्वेतकेतु को उसके पिता उद्दालक आरुणि ने जो ब्रह्म का उपदेश किया है, वह उपनिषत्साहित्य में अद्वितीय है। पिता पुत्र से पूछता है कि तुम आचार्यकुल में 12 वर्ष विद्या पढ़कर आये हो और अपने को पण्डित मान रहे हो क्या तुम उस तत्व को जानते हो जिसके जान लेने से अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विज्ञात हो जाता है। फिर वह पुत्र को उपदेश करता है कि जैसे मिट्टी या लोहे का ज्ञान लेने से मिट्टी और लोहे की बनी हुई सब वस्तुएं ज्ञात हो जाती हैं ऐसे ही एक 'सत्' है, जिसे ज्ञान लेने से विश्व की सब वस्तुएं ज्ञात हो जाती है क्योंकि सब उसी से बनी हैं। आगे वह अनेक रोचक दृष्टांतों से 'तत् त्वमसि' का उपदेश करता है।

"जैसे गूलर के फल को तोड़ने पर उसमें जो छोटे-छोटे दाने दिखाई देते हैं उनके अन्दर कुछ नहीं दिखता, पर प्रत्येक बीज के

(शेष पृष्ठ 7 पर)

www.thearyasamaj.org

सम्पादकीय.....

आर्यत्व के गुणों को धारण करें

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि संसार भर में वैदिक धर्म का प्रचार करके मनुष्य मात्र को आर्य बनाया जाय। उद्देश्य जितना महान है उतना ही विशाल भी है और उसकी पूर्ति उससे भी कठिन प्रतीत होती है। कठिनाई के अनेक कारण हैं। उनमें सबसे बड़ा यह है कि आर्यत्व स्वयं एक कठिन वस्तु है, ईसाई उसे कहते हैं जो ईसाई पादरियों द्वारा बतलाए गए सिद्धान्तों को स्वीकार करता हो। मुसलमान उसे समझा जाता है जो हजरत मुहम्मद और कुरान पर ईमान रखे। इस दृष्टि से ईसाई अथवा मुसलमान को पहचानना बहुत आसान है परन्तु आर्य शब्द की व्याख्या इतनी सरल नहीं है। आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ। जिसके कर्म और विचार दोनों श्रेष्ठ हो वह आर्य कहलाता है। महर्षि दयानन्द ने अपने स्थापित किए हुए समाज का नामकरण न तो अपने नाम से किया और न ही किसी अन्य के नाम से । उन्होंने समाज का नाम आर्य समाज के नाम से रखा। इसकी यही सुन्दरता है कि महर्षि ने नामकरण द्वारा ही अपने अभिप्राय को सर्वथा स्पष्ट कर दिया। वह आर्य समाज को अन्य मत मतान्तरों की तरह कोई पन्थ नहीं बनाना चाहते थे और न ही ये चाहते थे कि केवल किन्हीं मन्तव्यों को मान कर कोई व्यक्ति धार्मिक समझा जा सके। वह धार्मिक तभी समझा जा सके जब उसके कर्म भी आर्यत्व लिए हो। आर्य किसे कहते हैं? इस प्रश्न का सरलतम उत्तर यह है कि जिसके विचार शुद्ध और विशाल हो और जीवन धर्मानुकूल हो वह आर्य है।

दूसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि धर्म क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि दयानन्द ने काशी शास्त्रार्थ में जो उत्तर दिया था वह अत्यन्त सरल और सुबोध है। महर्षि दयानन्द जी ने मनुस्मृति का यह श्लोक उद्धृत किया था:-

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

महर्षि के शब्दों में धर्म का निरूपण वेद स्मृति वेदानुकूल आप्तोक्त, मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सतपुरूषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेद द्वारा प्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है जैसा कि सत्य भाषण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इसी से धर्म अधर्म का निश्चय होता है। वैदिक सिद्धान्त सत्य होने के कारण मनुष्य के जीवन को धार्मिक बनाते हैं। सत्य सिद्धान्त सत्य कर्म के आधारभूत होने के कारण धार्मिक जीवन के लिए आवश्यक है। परन्तु केवल यदि सिद्धान्त हो और उनके अनुसार कर्म न हो तो मनुष्य धार्मिक या आर्य नहीं कहला सकता। इस विचार से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वही मनुष्य आर्य कहलाने का अधिकारी है जिसका जीवन धर्मानुकूल और श्रेष्ठ हो ।

ऐसे मनुष्य के बाह्य चिन्ह क्या होंगे? किसी विशेष प्रकार के कपड़े या किसी विशेष प्रकार के तिलक आदि धार्मिकता या आर्यत्व के चिन्ह नहीं हो सकते। यदि वस्तुत: उसमें धर्म के लक्षण हैं तो उसके चेहरे पर शान्ति होगी, व्यवहार में उदारता और क्षमा होगी। वह क्रोध और लोभ में नहीं आएगा। सारांश यह कि उसका जीवन अच्छे और उँचे जीवन का एक आदर्श होगा। वह सबके साथ प्रेम और सौजन्य का व्यवहार करेगा। दीन-दुखियों की सहायता करेगा और अन्याय और अत्याचार का दृढ़ता से सामना करेगा। भय और प्रलोभन उसे अच्छे मार्ग से न हटा सकेगें। वह निजी जीवन में अच्छा पुत्र, सदाचारी गृहस्थ, और अच्छा नागरिक होगा।

ये सब आर्यत्व के चिन्ह हैं । इससे यह स्पष्ट है कि यदि हम मनुष्य मात्र को वैदिक धर्म का उपदेश देकर आर्य बनाना चाहते हैं तो सबसे पहला कार्य जो हमें करना चाहिए वह यह है कि हम अपने आप को आर्य बनाएं। यदि हमारे मन में और हमारे आचरण में आर्यत्व नहीं है तो हम वैदिक धर्म और आर्य समाज के विषय पर महर्षि दयानन्द का नाम लेकर जितने मर्जी भाषण दें उसका कोई प्रभाव दूसरों पर नहीं पड़ता है। इसके विपरीत यदि हम मन वचन और कर्म से आर्य और वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी हैं तो हमारे थोड़े से शब्द भी कई लोगों के हृदयों में परिवर्तन कर सकते हैं। जो मनुष्य आर्यत्व से पूर्ण है वह यदि मौन भी रहे तो केवल उसके जीवन का दृष्टान्त भी दूसरों को आर्य बनाने के लिए पर्याप्त है। ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव इतनी दूर तक जाता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जिन महानुभावों ने महर्षि के बोए हुए बीज को सींचकर इस रूप में पहुंचाने का श्रेय प्राप्त किया उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वे क्रियात्मक धर्म के नमूने थे। वे सच्चे और निर्भय थे। लोभ या लालच के कारण वे अपने पथ से विचलित नहीं होते थे। यदि किसी नगर या गांव में कोई ऐसा आर्य पुरूष होता था तो लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते थे और उसके व्यवहार और सच्चे जीवन से प्रभावित होकर लोग आर्य समाज की ओर झुक जाते थे।

उस समय आर्य समाज का दायरा छोटा था आज बहुत बढ़ गया है। तब देश का वातावरण हमारे विचारों के प्रतिकूल तथा अब अनुकूल है। इस पर भी यदि हम यह अनुभव करते हैं कि हमारे प्रचार की शक्ति कम हो गई है, नवयुवक आर्य समाज की ओर कम झुकते या हमारा संगठन बिखर गया है तो इसका मुख्य कारण यही है कि समाजिक विस्तार के बढ़ जाने पर व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता पर हमारा ध्यान नहीं रहा। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को अधिकाधिक शुद्ध प्रगतिशील और समन्वयात्मक बनाते रहें। साथ ही इनमें बाधक भीतरी और बाहरी तत्वों एवं रूढ़ियों से चाहे वे राजनीतिक हों वा साम्प्रदायिक हों सावधान रहकर उनके निराकरण में अपनी करनी और कथनी के द्वारा जुटे रहें।

हमारे पास मार्गदर्शन के लिए महर्षि दयानन्द जी द्वारा बताए गए सार्वभौमिक सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों को अपने जीवन के अन्दर अपनाकर हम अपने जीवन को आर्यत्व से पूर्ण बना सकते हैं। महर्षि दयानन्द की पवित्र भावना विश्व भ्रातृत्व, विश्व शान्ति, विश्व उन्नति और सृष्टि के सौंदर्य को बनाए रखने की कुंजी है।

-प्रेम भारद्वाज, संपादक एवं सभा महामन्त्री

www.thearyasamaj.org

'महर्षि दयानन्द की आकस्मिक मृत्यु का कुप्रभाव उनके किन भावी कार्यों पर हुआ ?'

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, पता: 196 चुक्खूवाला-2 देहरादून-248001

ऋषि दयानन्द मारवाड़ की जोधपुर रियासत से आमन्त्रण मिलने पर वहां वैदिक धर्म के प्रचार के लिए गये थे। उन दिनों वहां महाराजा जसवन्त सिंह का शासन था और उनके अनुज कुंवर प्रताप सिंह थे। उनके एक अन्य बन्धु रावराजा तेजा सिंह भी थे। कुवंर प्रताप सिंह जी ने ऋषि दयानन्द को जोधपुर आकर वेदों के प्रचार का आग्रह किया था। महर्षि दयानन्द द्वारा जोधपुर जाने का निश्चय करने पर उनके अपने अंतरंग शिष्यों महाराजा नाहर सिंह, शाहपुरा राज्य व अजमेर के लोगों ने उन्हें जोधपुर न जाने या यदि वह जायें तो वहां खण्डन में सावधानी बरतने की सलाह दी थी। महर्षि दयानन्द ने उनको दी गई सलाह का प्रतिवाद कर असत्य के खण्डन को पूरी शक्ति से करने की बात कही थी। उन्होंने जोधपुर जाकर एक ओर जहां वैदिक धर्म की मान्यताओं का प्रचार किया वहीं उन्होंने महाराजा जोधपुर के चरित्र विषयक अवगुणों का खण्डन भी किया। कहते हैं कि उन्होंने कहा था कि राजा तो सिंह वा शेर के समान होते हैं और वैश्यायें की उपमा उन्होंने कुतियों से दी थी। बताते हैं कि एक नन्ही भगतन नाम की स्त्री महाराजा की प्रिय दासी व वैश्या थी और अपनी रानियों की उपेक्षा व अनदेखी करते थे। महाराज उस नन्ही वैश्या पर मुग्ध थे और उसे राज्य में अनेक अधिकार भी प्राप्त थे जिसका विपरीत प्रभाव राज्य संचालन व राज्य की जनता पर पड़ रहा था। महर्षि दयानन्द ने देशी राजाओं की वैश्याओं पर आसक्ति का कड़े शब्दों में खण्डन किया था। मुस्लिम मत की अवैदिक व अविवेकपूर्ण कुछ मान्यताओं का युक्ति व तर्क से भी समीक्षा की थी जिससे जोधपुर राज्य के प्रधान मंत्री मियां फैजुल्ला खां क्रोधित व लाल-पीले हो गये थे। उनके क्रोध से युक्त वचनों का महर्षि दयानन्द ने यथोचित प्रतिवाद भी किया था। कहते हैं कि मियां फैजुल्ला खां ने कहा था कि यदि जोधपुर एक मुस्लिम रियासत होती तो स्वामी दयानन्द इस प्रकार वैदिक धर्म का प्रचार व खण्डन मण्डन नहीं कर सकते थे। ऋषि का उत्तर था कि यदि प्रचार में कोई बाधा पहुंचाई जाती तो वह दो राजपूतों की पीठ ठोक देते।

ऐसी कुछ बातें वहां हुई थी। इससे अनुमान होता है कि नन्ही भगतन और फैजुल्ला खां, उनके निकटस्थ कृपा पात्र व अपने लोगों सहित राज परिवार के कुछ लोग भी ऋषि दयानन्द के खण्डन से खिन्न व उग्र हो गये थे जिसका परिणाम एक गुप्त षडयन्त्र द्वारा उन्हें विषपान कराया गया। विषपान के उनके उपचार में भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लापरवाही की गई जिसका परिणाम 30 अक्तूबर, 1883 को दीपावली के दिन अजमेर स्थित भिनाय की कोठी में उनकी मृत्यु के रुप में सामने आया। देश और आर्यसमाज पर इसका प्रभाव यह हुआ कि उनके द्वारा किया जा रहा वैदिक धर्म का प्रचार अवरुद्ध हो गया और वेदभाष्य सहित नये-नये विषयों का शंका समाधान, धर्म विषय पर चर्चायें तथा शास्त्रार्थ आदि सभी दैनन्दिन कार्य समाप्त हो गये। यदि विषपान न होता तो स्वामी जी की मृत्यु भी न होती और तब देश और विश्व को चारों वेदों का पूरा भाष्य मिल सकता था अन्य भी कुछ नये ग्रन्थ जिनका अनुमान करना संभव नहीं है, वह भी अनेक विषयों पर उनसे प्राप्त होते। महर्षि दयानन्द को जिस दिन विष दिया उस दिन व उससे पूर्व वह प्रमुख कार्य ऋग्वेद के सप्तम मण्डल का भाष्य कर रहे थे। विष के अगले दिन से उनका स्वास्थ्य इस योग्य नहीं रहा कि वह स्वास्थ्य लाभ के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य कर सकते। अत: यह कार्य स्थाई रूप से अवरुद्ध हो गया। यदि वह अवशिष्ट ऋग्वेद और उसके बाद सामवेद और अथर्ववेद का भाष्य भी पूरा कर लेते तो यह विश्व के इतिहास और साहित्य में बेजोड़ ज्ञान होता। शायद भारतीयों व विश्व के मनुष्यों का ऐसा प्रारब्ध नहीं था कि वह ईश्वर प्रदत्त वेदों के सम्पूर्ण यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर सकते। इसीलिए वह महर्षि दयानन्द कृत सम्पूर्ण वेदों के ज्ञान से वंचित रहे। ईश्वर की कृपा है कि ऋषि के अनेक अनुयायी विद्वानों ने चारों वेदों का हिन्दी वा संस्कृत दोनों भाषाओं में भाष्य पूरा कर दिया। न केवल वेदों का ही अपितु सभी प्रमाणित उपनिषदों एवं दर्शनों के भाष्य सहित मनुस्मृति का भाष्य व मन्त्रानुवाद सहित विशुद्ध मनुस्मृति का प्रकाशन भी आर्यसमाज के विद्वानों वा ऋषि अनुयायियों ने सम्पन्न किया व कराया है। ऋषि भक्त आर्य विद्वानों द्वारा ऋषि शैली व सिद्धान्तों के अनुरुप वेदों का भाष्य करना असाधारण उपलब्धि है। अत: परमात्मा की दया व कृपा से ऋषि दयानन्द जी का जो कार्य असामयिक मृत्यु के कारण छूट गया था, वह भी ऋषि स्तर का तो न हो सका परन्तु अन्य रूप में पूरा अवश्य हो गया।

ऋषि दयानन्द को यदि विष न दिया जाता तो वह अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य और अच्छे स्वास्थ्य के कारण दीर्घ काल तक जीवित रहते। देश-विदेश का भ्रमण कर सकते थे। देश-विदेश के विद्वानों से मिलकर संवाद कर सकते थे और उन्हें वैदिक मत और सिद्धान्तों से सहमत करा सकते थे। वह जहां जहां जाते, वहां नये आर्यसमाज स्थापित होते और आर्यसमाज का प्रभाव जो उनकी मृत्यु के समय था, उसमें काल क्रम के अनुसार बहुविध उन्नति व वृद्धि होती। हम यह भी बता चुके हैं कि स्वामी दयानन्द अनेक अन्य ग्रन्थों की रचना भी करते जिसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। उनकी असामयिक मृत्यु से हम उनके उन ग्रन्थों से भी वंचित हो गये हैं। उनकी भावी जीवन के अनेकानेक अवसरों के अनेक चित्र भी हमारे पास होते जिससे हमें व भावी पीढ़ियों को प्रसन्नता होती। मृत्यु के समय स्वामी जी 58-59 वर्ष की आयु के थे। अब उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि उनके माता-पिता व भाई बन्धु आकर उन्हें अपने साथ उनकी जन्म भूमि टंकारा ले जाने का आग्रह कर सकते थे। ऐसी स्थिति में मृत्यु न होने पर उसके कुछ बाद वह अपने जन्म के वास्तविक स्थान, माता-पिता व बन्धुओं के नाम व उनकी कुछ विस्तार से जानकारी दे सकते थे जो उनके अनुयायियों व शोधार्थियों के लिए विशेष उपयोगी होती। हमें यह भी अनुभव होता है कि 30 अक्तूबर, 1883 के बाद के उनके जीवन में अनेक पौराणिक विद्वानों से संवाद होते और हो सकता है उनमें से कुछ प्रतिभाशाली विशेष विभूतियां वैदिक मत को स्वीकार कर उनका शिष्यत्व ग्रहण करती।

स्वामी दयानन्द सच्चे और उच्च कोटि के सिद्ध योगी थे। यह सम्भव था कि यदि उनका कोई भक्त साधना समाधि आदि के अनुभवों पर ग्रन्थ लिखने का आग्रह करता तो वह इस कार्य को अवश्य पूरा करते। इस कार्य के सम्पन्न होने पर उनका यह कार्य संसार के साहित्य में एक अपूर्व ग्रन्थ हो सकता था। इससे भी हमारा देश व समाज वंचित हुआ है। स्वामी जी के मस्तिष्क में अनेक ऐतिहासिक तथ्य विद्यमान थे जिनको समग्रता से प्रस्तुत करने का अवसर उन्हें जीवन में नहीं मिला। यदि उन्हें बाद में अवकाश मिलता तो वह यह कार्य भी सम्पन्न कर सकते थे जिससे देश को बहुत लाभ होता। स्वामी जी का निधन अंग्रेजों के पराधीनता के काल में हुआ था। सन् 1857 में वह 32 वर्ष के युवा थे। देश की तत्कालीन धार्मिक व सामाजिक स्थिति से पूर्णतया परिचत व जागरूक थे। आशा की जाती है उन्होंने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। यदि भाग न भी लिया हो तो इससे जुड़ी अनेक स्मृतियां तो उनके मन व मस्तिष्क में थी हीं। यदि उनके जीवन काल में ही स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती तो उत्तर काल में वह बहुत सी ऐसी बातों का उद्घाटन भी कर सकते थे जिन्हें पराधीनता के कारण प्रस्तुत करना उनके लिए सम्भव नहीं था। इन व ऐसे अनेकानेक कार्यों व ज्ञान से देश व समाज वंचित हुआ है। हम इस लेख का और विस्तार न कर शेष बातों के लिए पाठकों को अपने-अपने विवेक पर छोड़ते हैं। इतिहास में किन्तु परन्तु का कोई महत्व व स्थान नहीं होता परन्तु हानि व लाभ का मूल्यांकन तो कुछ कुछ किया ही जा सकता है व किया जाना चाहिये तभी हम भविष्य के प्रति सजग हो सकते है। जो गलतियां हमारे पूर्वजों से उस समय हुई हैं, उनसे शिक्षा भी ग्रहण कर सकते हैं। इसी के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

www.thearyasamaj.org

वर्णाश्रम व्यवस्था समाज व राष्ट्र के लिए कितनी हितकर

-ले० पं० खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबन्दि राय आर्य अण्ड सन्द १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

हमारे ऋषि, मुनियों ने वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था बहुत ही सोच समझ कर बनाई थी। ये दोनों ही व्यवस्था समाज व राष्ट्र को उन्नत व समृद्धशाली बनाने में काफी सहायक सिद्ध हुई है। इन दोनों व्यवस्थाओं का यदि ठीक ढंग से सदुपयोग किया जाए तो ये समाज व राष्ट्र के लिए काफी उपयोगी हो सकती है। जैसे भारत में महाभारत के विश्व युद्ध तक लाभकारी होती रही है। वर्ण व्यवस्था समाज राष्ट्र के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए ''कार्य विभाजन'' है। यानि प्रत्येक वर्ण के अपने अलग-अलग कार्य जो उनके ऊपर है, उनको यदि वे अपने कर्त्तव्य भाव से करते हैं तो समाज व देश के लिए बड़े सहायक व हितकारी सिद्ध हो सकते हैं। अन्यथा वे समाज व राष्ट्र के लिए घातक भी सिद्ध हो जाते है। जैसे अभी हो रहे हैं।

वर्ण चार है (१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य (४) शूद्र। प्रत्येक समाज व राष्ट्र में तीन दोष या कमजोरियां होती हैं। (1) अज्ञान (2) अन्याय (3) अभाव। प्रथम तीन वर्ण क्रमशः इन तीन दोषों को मिटाने यानि दूर करने के लिए बनाये गये थे। ब्राह्मण वेद-ज्ञान द्वारा अज्ञान को दूर करता था। क्षत्रिय अपने बल व साहस के द्वारा अन्याय को दूर करता था। वैश्य अपने व्यापार व कृषि द्वारा अभाव को दूर करता था। इस प्रकार इन तीनों की प्रत्येक समाज व राष्ट्र को बड़ी आवश्यकता थी। ये तीनों वर्ण अपने कार्य कर्त्तव्य का सुचारू रूप से पालन करते रहें इसलिए उनकी सेवा के लिए शूद्र वर्ण बनाया था। शूद्र वह होता है जो पढ़ाने से भी न पढ़े, ऐसा व्यक्ति जिसमें अज्ञान, अन्याय व प्रभाव को दूर करने की क्षमता न हो। उस व्यक्ति को पहले तीन वर्णों की सेवा करने का काम दिया गया था ताकि वे वर्ण निश्चिन्त हो कर अपने कर्त्तव्य को सुचारू रूप से पूर्ण कर सकें। यह वर्ण व्यवस्था समाज व राष्ट्र का कार्य सुचारू रूप से चलता रहें, उसमें कोई विघ्न-बाधा न आवे इसलिए बनाई गई थी। चारों वर्णों में कोई छोटा-बड़ा नहीं था। सभी समाज व राष्ट्र के समान अंग थे। सभी को धार्मिक, समाजिक व अन्य कार्य करने की बराबर छूट थी यानि सब स्वतन्त्र थे। जैसे किसी बरात को भोजन खिलाने के लिए सुन्दर व्यवस्था बनाये रखने के लिए किन्ही चार व्यक्तियों को जिम्मा दिया जाता है। एक व्यक्ति हल्वा परोसता है, एक व्यक्ति पूड़ी, एक व्यक्ति पानी और एक व्यक्ति साग परोसता है। ये सभी काम जरूरी है। इनमें कोई काम छोटा बड़ा नहीं है। बरात को सुचारू रूप से भोजन करवाने के बाद वे चारों व्यक्ति एक साथ बैठकर भोजन करते हैं और उनका भोजन भी समान होता है। इसी प्रकार चारों वर्ण भी समान हैं। उनको धार्मिक, समाजिक व अन्य कार्यों को करने की समान सुविधाएँ होनी चाहिये।

महाभारत के विश्वव्यापी युद्ध में सभी योद्धा, धर्माचार्य, विद्वान् तथा राजनीतिज्ञ समाप्त हो जाने से स्वार्थी व कम पढ़े लिखे ब्राह्मण, विद्वान् बन गये और उन्होंने अपना स्वार्थ सिद्ध करने तथा अपना पेट भरने के लिए अनेक मत-मतान्तर चला दिये और वर्ण जो कर्म पर निर्धारित थे उनको जन्म से जाति के रूप में मानना आरम्भ कर दिया और उन्होंने प्रचलित कर दिया कि ब्राह्मण के घर पैदा हुआ बालक ब्राह्मण ही होगा, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो। अन्य जाति के लोग उसका ब्राह्मण समझ कर ही सम्मान करेंगे। इससे हानि यह हुई कि ब्राह्मणों ने स्वयं भी वेदों को पढ़ना छोड़ दिया और दूसरी जाति के लोगों से भी वेद पढ़ने का अधिकार छीन लिया, यहाँ तक कि स्त्रियों व शूद्रों को तो वेद पढ़ना पाप समझा जाने लगा। इससे वेद-ज्ञान प्रायः लुप्त हो गया, जिससे अनेक प्रकार के अन्धविश्वास व पाखण्ड चल पड़े। जैसे मूत्ति-पूजा, अवतारवाद, अनेक देवी-देवातओं की पूजा, श्राद्ध-तर्पण, भूत-प्रेत, गण्डा-डोरी आदि प्रचलित हो गये, जिससे सही ईश्वर की उपासना, यज्ञ, सत्संग आदि छोड़ दिये और सभी वर्ण वाले अपना-अपना कर्त्तव्य छोड़ कर केवल अपने स्वार्थ में ही लिप्त हो गये, उससे केवल भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सभी लोग पतन की ओर अग्रसर हो गये जिससे आज मानव-मात्र की स्थिति बड़ी नाजुक हो गई है।

वर्णों जैसी हालत आश्रमों की है। आश्रम भी हमारे ऋषि-मुनियों ने मनुष्य को व्यक्तिगत रूप में पूर्ण बलशाली, विद्वान, चरित्रवान व पूर्ण मानव यानि जिसमें मानवता के सभी गुण, दया, परोपकार, साहस, उदारता, सहनशीलता आदि हो, ऐसा मानव बनाने की व्यवस्था की थी। इसके लिए मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष की निर्धारित करके, उसको चार भागों में बांटा था। इसके आरम्भ के पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है। जिसमें वह गुरूकुल में पढ़कर वह बल व बुद्धि से पूर्ण व सुदृढ़ होता है। फिर पच्चीस से पच्चास वर्ष तक गृहस्थ आश्रम होता है। इसमें वह अच्छी सन्तान पैदा करके देश को सुदृढ़ बनाता है और गृहस्थ का पालन करते हुए बाकि तीन आश्रमों को भी आश्रय देता है, इसीलिए यह आश्रम जयेष्ठ व श्रेष्ठ माना गया है। तीसरा आश्रम वानप्रस्थ का है। यह पच्चास से पचहत्तर वर्ष तक का होता है। इसमें मनुष्य स्वयं अकेला या अपनी धर्म पत्नी को साथ लेकर समाज की सेवा निः शुल्क करता है और समाज उसका जीवन यापन करता है। वह समाज की हर प्रकार की सेवा बिना वेतन लिए कर्त्तव्य भाव से कहता है। जैसे गुरूकुलों का आचार्य बन कर, आर्य समाजों का पुरोहित बनकर या गऊशाला, अनाथालय व औषध्यालय की सेवा करता है। इस आश्रम के होने से देश की सभी सेवा संस्थाएँ सुचारू रूप से चलेगी और राष्ट्र दिनों दिन उन्नति करेगा। चौथा आश्रम पचहत्तर से एक सौ वर्ष तक का है, इसे संन्यास आश्रम कहते हैं। इसमें मनुष्य भगवें वस्त्र (जो त्याग का प्रतीक है) धारण करके पूर्ण रूप से परोपकारी कार्यों में लग जाता है। उसके लिए पूरा विश्व एक परिवार हो जाता है और पूरा विश्व उसकी संन्तान के समान हो जाता है। वह एक स्थान पर न रहकर-ग्राम-ग्राम व घर-घर जाकर वेद-प्रचार करता है और गृहस्थी उनका आदर सत्कार करता है। इस प्रकार ये चारों आश्रम मनुष्य के जीवन का विस्तार बढ़ाते हैं। ब्रह्मचर्य में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत बल और बुद्धि को बढ़ाकर पूर्ण यौवन प्राप्त करता है। गृहस्थ में व्यक्ति अपने स्वयं का ध्यान रखते हुए परिवार व समाज का भी ध्यान रखता है। इस प्रकार उसका जीवन व्यक्तिगत् से समाज तक हो गया। वानप्रस्थ में व्यक्ति परिवार व समाज से उठकर पूरे राष्ट्र का हो जाता है। इस प्रकार उसका विस्तार समाज से राष्ट्र तक का हो गया। संन्यास में व्यक्ति राष्ट्र से पूरे विश्व का हो जाता है। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था विश्व शान्ति और मनुष्य की उन्नति व विकास की बहुत सुन्दर व्यवस्था है। इन व्यवस्थाओं को कर्त्तव्य भाव से सुचारू रूप से करने से मोक्ष प्राप्ति का कार्य प्रशस्त होता है। परन्तु महाभारत के बाद इन चारों व्यवस्थाओं की अवहेलना की जाती है। प्रथम आश्रम के लिए बच्चों को गुरूकुल नहीं भेजा जाता है। गृहस्थ में भी पंच महायज्ञों का पालन नहीं होता और मनुष्य वानप्रस्थ व संन्यास में न जाकर गृहस्थ में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देता है। इन दोनों व्यवस्थाओं का यदि सुचारू रूप से पालना किया जावे तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य का जीवन सुखी न बने और वह मोक्ष की ओर अग्रसर न हो।

ये दोनों व्यवस्थाएँ समय के प्रभाव से काफी कमजोर हो गई थी। तब ईश्वर की अपार कृपा से सन् 1824 में गुजरात प्रान्त के टंकारा ग्राम में एक महामानव का जन्म हुआ जिसका बचपन का नाम मूलशंकर था। वह 22 वर्ष की आयु में सच्चे शिव की खोज में घर से निकल पड़ा और संन्यासी वेश में स्वामी पूर्णा नन्द से स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम रखवा कर अनेक वर्षो तक पूरे भारत का भ्रमण करके अपने तपस्वी जीवन में अनेकों दुःखों, कष्टों व अभावों को सहते हुए किसी के बताने पर सद्गुरू विरजानन्द के पास मथुरा जा पहुँचे। वहाँ तीन वर्ष सद्गुरू की गोद में बैठकर वेदाध्ययन किया और फिर गुरू के आदेश से ही अपने पूरे जीवन वेदों का प्रचार करके विश्व में पुनः वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचलन किया। साथ ही विश्व से अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड को मिटाने का पूरा प्रयत्न किया और काफी हद तक सफलता भी मिली। इन कार्यों को करके योगीराज देव दयानन्द ने हमारे ऊपर जो उपकार किया है, उसके लिए हम महर्षि दयानन्द के सदा ऋणि बने रहेंगे।

www.thearyasamaj.org

उपासक उपास्य संबंध

-ले. नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' 602 जी एच 53 सैक्टर 20, पंचकूला मो. 09467608686,

कोई भी उपासक किसी की उपासना क्यों करता है ? उपासना की विधि क्या है और उपास्य देव कौन हो ? ये प्रश्न किसी भी उपासक के मन में उपासना के लिए उद्यत होने से पूर्व अक्सर ही उठते हैं। किसी भी उपासक के लिए अपने उपास्य देव को जानता, मानना फिर उपासना करते हुए उस उपासना के उद्देश्य को प्राप्त करना होता है। उपास्य देव को पहचानने से पूर्व उपासक को अपनी स्थिति का बोध होना अत्यंत आवश्यक है। आइये इन प्रश्नों पर एक-एक कर विचार करते हैं।

प्रथम उपासक कौन ? जिसमें भी किसी गुण विशेष का अभाव और उसके मन में उस गुण को प्राप्त करने की बलवती इच्छा जब उत्पन्न हो जाती है तो वह व्यक्ति सर्वप्रथम उस गुण विशेष संपन्न मित्र जो उसे वह गुण देकर कष्ट से मुक्त कर सके, उसकी खोज करता है। सरल शब्दों में यदि कोई निर्धन व्यक्ति धन चाहता है तो वह धन प्राप्ति की इच्छा से अपने ऐसे किसी मित्र की खोज करके उपासना करेगा जो उसे धन प्रदान कर निर्धनता के कष्ट से मुक्ति दिलवा सके। इसी प्रकार रोगी वैद्य की, भूखा किसी लंगर चलाने वाले की खोज करके उपासना करता है। दूसरे शब्दों में उपासक वह है जिसमें किसी गुण का अभाव है और उस गुण के अभाव के कारण वह कष्ट की स्थिति में है। उपासक के लिए आवश्यक हो जाता है कि उसे इस बात का बोध हो कि उसमें किस गुण का अभाव है और उस अभाव के कारण होने वाले कष्ट को दूर करने के लिए उसमें उस गुण की ग्राह्यता के लिए बलवती इच्छा उत्पन्न हो। तीसरा वह किसी ऐसे व्यक्ति को खोजे जिसमें वह गुण पूर्व से ही विद्यमान हो। चौथा वह गुणी उपास्य उस गुण को उपासक को देने की इच्छा भी रखता हो। अन्तिम उपासक को अपने उपास्य देव की उपासना विधि का ज्ञान हो।

सामान्य लोकव्यवहार में हम अबोध मनुष्य उपासना के नाम पर क्या प्रपंच करते हैं। तेजी से गाड़ी चलाते सड़क के किनारे किसी पीर की मजार या मन्दिर के सामने धीरे से मस्तक झुका देना या फिर बहुत किया तो मन्दिर में जाकर किसी मूर्ति के समक्ष माथा झुकाना और चढ़ावा चढ़ा कर अपनी मांग रख देना जैसे उपासना ना हुई कोई व्यापार हो गया। "सवा मणी करूंगा मेरी लाटरी लगा दे, मेरी मन्नत पूरी होने पर ये चढ़ावा चढ़ाउंगा या फिर हे बजरंग बली तोड़ दुश्मन की नली" इन सब में ना तो उपासक को अपनी स्थिति का बोध है ना उपास्य देव का और ना ही उपासना की विधि का। यहां उपासक को पता ही नहीं कि उसमें कौन सा गुण न्यून है और वह गुण उपास्य देव के पास है या नहीं और वह उसे कैसे पा सकता है। एक चेतन द्वारा जड़ की उपासना से चेतनता की वृद्धि कैसे हो सकती है

कलियुग के इंसान की उल्टी देखी चाल।

जड़ के आगे चेतना क्यों झुकावे भाल।।

जड़ की उपासना से तो चेतन के भी जड़ बन जाने की संभावना होती है जबकि यदि कोई जड़ पदार्थ किसी समर्थ चेतन कारीगर के हाथ लग जाए तो उसमें गति अवश्य आ जाती है जैसे घड़ीसाज के हाथ में घड़ी और मैकेनिक के हाथ में मोटर। इतना सब समझते हुए भी मनुष्य के रूप में मननशील होकर भी हम उपासक ना तो अपनी स्थिति को जान पाते हैं ना ही अपने गुणों की न्यूनता को और ना ही उपास्य देव जिसके पास वह गुण हों और उन्हें देने की इच्छा और सामर्थ्य रखता हो।

आइये इन प्रश्नों के उत्तर खोजते है। मनुष्य के रूप में जीव एकदेशीय होने के कारण अल्पज्ञ व अबोध है और ज्ञान प्राप्ति के लिए वह अन्यों पर निर्भर है। सृष्टि के निर्माण से पूर्व और संहार के बाद भी रहने वाला सर्वव्यापी सृष्टिकर्ता सर्वज्ञ है और उस सर्वज्ञ ईश्वर ने सृष्टि के समस्त प्राणियों के लिए वेदरूपी ज्ञान एक नियमावली संहिता के रूप में दिया है। अब अल्पज्ञ उपासक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह उस सर्वज्ञ प्रभु द्वारा दिए वेद ज्ञान को प्राप्त करे। इसीलिए महर्षि देव दयानन्द ने वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सभी आर्यों का परम धर्म बतलाया है। यदि हममें दया की कमी है तो हम परम दयालु परमपिता परमेश्वर से इस गुण को प्राप्त करें। ईश्वर न्यायकर्ता है तो हम भी अपने आचरण व्यवहार में दूसरों के साथ न्याय किया करें। हम अल्पशक्तिमान हैं और किसी भी सर्वहितकारी कार्य की सिद्धि के लिए व निष्काम भाव से यज्ञीय कार्य करने के लिए अपने सही दिशा में किए पूर्ण पुरूषार्थ के उपरान्त ईश्वर से प्रार्थना उस शक्ति को प्राप्त करने के लिए व सहाय के लिए किया करें। वही ईश्वर हमारा सच्चा सहायक व मित्र है। '**इन्द्रस्य युज्यः सखा**' कहकर वेद भगवान ने परमात्मा को जीवात्माओं का सच्चा मित्र कहा। ऋग्वेद में '**दुणाशं सख्यं**' कहकर स्पष्ट कर दिया कि ईश्वर की मित्रता स्थायी और विश्वसनीय है और इसी मंत्र में '**गौरसि वीर गव्यते**' तथा '**अश्वो अश्वायते भव**' कहकर स्पष्ट कर दिया कि ईश्वर की मित्रता से गाय चाहने वाले को गाय और अश्व चाहने वाले को अश्व मिलता है। जिससे स्पष्ट है कि निष्काम भाव से किए जाने वाले परोपकार के यज्ञीय कार्यों के लिए सही दिशा में किए पुरूषार्थ के उपरान्त उपासना करते हुए हम उपासक मनुष्यों के लिए अपने उपास्य देव से निश्चित ही सहायता प्राप्त होती है। लेकिन यहां यह भी स्पष्ट है कि '**इन्द्रस्य युज्य सखा**' अर्थात् ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करने के लिए उद्यत हो।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुणों के अभाव के कारण हम अल्पशक्ति वाले अबोध अज्ञानी मनुष्य उन गुणों की प्राप्ति के लिए सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान दयालु सच्चिदानंदस्वरूप सर्वव्यापी निराकार ईश्वर की उपासना उन गुणों की प्राप्ति के लिए किया करें और उपासक उपासना करते समय अपने आत्मा को सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा के आनंद में निमग्न कर दें और आत्मा परमात्मा के आनंद में निमग्न होकर नर्तन करने लगे लेकिन कभी सत्य और चेतन के आधार के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। उपासना करते हुए उपासक उपास्य देव से उन गुणों को प्राप्त करके एकरूप हो जाता है।

"आर्य समाज धारीवाल का वार्षिक चुनाव सम्पन्न

आर्य समाज धारीवाल का वार्षिक चुनाव रविवार को श्री मति अनुराधा जी की अध्यक्षता में निविरोध सम्पन्न हुआ जिसमें निम्न अधिकारी सर्व सम्मत्ति से चुने गये।

1. संरक्षक- श्री जगदीश मित्र, 2. प्रधान श्री सोम नाथ जी, 3. वरिष्ठ उपप्रधान श्री देवेन्द्र नाथ, 4. उपप्रधाना श्री मति अनुराधा, 5. महामन्त्री श्री शास्त्री जोगेन्द्र पाल, 6. उपमन्त्री श्री यश महाजन, 7. कोषाध्यक्ष श्री अनिल पुरी, 8. पुस्तकालयाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र पुरी, 9. वस्त्र भण्डराध्यक्ष श्री हरीश, अन्तरङ्ग सदस्य श्री मति बन्सो रानी, सुनीता रानी ।

-महामन्त्री शास्त्री जोगेन्द्र पाल धारीवाल

आर्य समाज, हमीरपुर का वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज, हमीरपुर (हिमालय) का वार्षिकोत्सव 11 नवम्बर से 13 नवम्बर तक बड़ी धूमधाम में सम्पन्न हुआ। प्रथम दिन यज्ञोपरान्त नगर में विशाल शोभा-यात्रा निकाली गई। तीनों दिन प्रातः यज्ञ होता रहा तथा प्रातः व सायं बरेली में पधारे पं. जितेन्द्र आर्य के मधुर भजनों का आनन्द श्रोताओं ने लिया तथा यमुनानगर में आए पं. इन्द्र जित् देव के सैद्धान्तिक उपदेशों का लाभ प्राप्त किया।

www.thearyasamaj.org

पृष्ठ 2 का शेष-उपनिषदों से ही सच्ची....

अन्दर गूलर का एक बड़ा वृक्ष समाया होता है, वैसे ही विश्व में ब्रह्म यद्यपि आंखों से नहीं दिखता तो भी वह है। 'वही तू है' हे श्वेतकेतु।

''जैसे नमक पानी के बर्तन में घोल देने पर खोजने पर भी फिर नहीं दिखाई देता, वैसे ही ब्रह्म सब वस्तुओं में रमा होने पर भी दीखता नहीं। श्रद्धा रख, हे श्वेतकेतु, वह है, 'वही तू है'- 'तत् त्वमसि श्वेतकेतो'। ''जैसे विभिन्न दिशाओं से नदियां बह कर आती हैं और अन्त में समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती हैं, वहां वे यह अनुभव नहीं करती कि मैं गंगा हूँ, मैं यमुना हूँ। इसी प्रकार आत्मा के ब्रह्म में लीन हो जाने पर पृथक् अनुभूति नहीं होती। वही तू है, हे श्वेतकेतु।

8. बृहदारण्यण्क उपनिषद् का याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद भी उपनिषत्साहित्य का अद्भुत रत्न है। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थी, कात्यायनी और मैत्रेयी। वे वानप्रस्थ ग्रहण करने से पूर्व दोनों से कहते हैं कि आइये तुममे मैं सम्पत्ति का बंटवारा कर दूं। पर मैत्रेयी पूछती है कि क्या धन दौलत से परिपूर्ण यह सारी भूमि भी मुझे मिल जाये तो क्या मैं उससे अमर पद् पा सकती हूँ। याज्ञवल्क्य के निषेधात्मक उत्तर देने पर वह कहती है कि मुझे तो आप वह ज्ञान दीजिए जिससे मैं अमरत्व पा सकूं। तब याज्ञवल्क्य उसे उपदेश देते हैं-

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति,

आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति,

आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।।

न वा अरे पुत्राणं कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति,

आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। (2.4.5)

पति, पत्नी, पुत्र, धन, पशु, ब्रह्म, क्षत्र, लोक, देवता, भूत आदि सब कुछ इनके लिए प्रिय नहीं होते, किन्तु आत्मा के लिए प्रिय होते हैं। इससे याज्ञवल्क्य परिणाम निकालते हैं कि जब सब कुछ आत्मा के लिए ही है तो आत्मा को ही क्यों न जाना जाये-

''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यः (2.4.5)

आत्मा का हीं दर्शन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिए। आत्मा के विदित्त हो जाने पर सब कुछ स्वयं विदित हो जाता है। जो इस आत्मा को ज्ञान लेता है, उसका इसके साथ अद्वैत हो जाता है।

उपनिषदों में पंचकोश, प्राण-साधना, ब्रह्मचर्य, तप, स्वाध्याय आदि के भी हृदयग्राही प्रसंग प्राप्त होते हैं। स्नातक बनते समय ब्रह्मचारी को दिया जाने वाला तैत्तिरीयोपनिषद् का यह उपदेश कितना उच्च है-

''सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

अतिथिदेवो भव।'' (तैत्तिरीयो-पनिषद् 1.11.1)

इस प्रकार उपनिषदें मनुष्य के संमुख उच्च उपदेश प्रस्तुत कर तथा ब्रह्मविद्या के रहस्यों को खोलकर मानव को अध्यात्म पथ का अनुयायी बनाती हैं। आज के युग में जब कि हिंसा, उपद्रव और युद्ध के बादल चारों और छा रहें हैं, **'सत्यं शिवंसुंदरम्'** के मन्त्र को लोग भूल चुके हैं, मानव बहिर्मुखी हो रहा है, उपनिषदों के अध्यात्म संदेश की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी से मानव को शान्ति प्राप्त हो सकती है।

''सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः (मुण्डक उप. 3.1.6)

सत्य की ही जीत होती, झूठ की नहीं। (मन, वाणी और कर्म से) सत्य के परिपालन से मनुष्य के लिए(मरने पर) देव-मार्ग खुल जाता है।

आर्य समाज पटियाला में वेद कथा एवं चतुर्वेदशतक पारायण यज्ञ सम्पन्न

आर्य समाज मन्दिर, चौंक आर्य समाज, पटियाला द्वारा दिनांक 9 नवंबर से 13 नवम्बर 2016 (रविवार) तक बड़ी धूम धाम और हर्षोल्लास के साथ वेद प्रचार सप्ताह एवं चतुर्वेदशतक पारायण यज्ञ मनाया गया। इस शुभ अवसर पर उत्तर प्रदेश मेरठ निवासी आर्य जगत के महान विद्वान एवं वैदिक प्रवक्ता आचार्य श्री वीरेन्द्र रत्लम जी मुख्य प्रवक्ता के रूप में एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से भजनोपदेशक पं. जगत वर्मा जी विशेष रूप से आमंत्रित थे। इस पूरे समारोह में पटियाला शहर और आस पास के कस्बों से आर्य भाई बहनों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। समारोह की सूचना के लिए सारे नगर में इश्तिहार बांटे गए और जगह-जगह पर बैनर लगाए गए।

9 नवम्बर 2016 दिन बुधवार को प्रातः 8:30 बजे चतुर्वेदशतक पारायण यज्ञ प्रारम्भ हुआ जिसकी पूर्णाहुति 13 नवम्बर 2016 दिन रविवार को सम्पन्न हुई। यज्ञ के ब्रह्मा इस आर्य समाज के बहुत ही विद्वान पुरोहित पं. गजेन्द्र शास्त्री जी थे। प्रतिदिन प्रातः 8:30 से 9:30 बजे तक यज्ञ और उसके पश्चात् 11:00 बजे तक पं. जगत वर्मा जी के भजन और आचार्य श्री वीरेन्द्र रत्लम जी के प्रवचन होते थे। प्रातः काल की बैठक के पश्चात नित्यप्रति हल्वा, मीठे चावल, खीर एवं फलों का प्रसाद बंटता था और सायंकाल की सभा (7:00 बजे से 9:00 बजे) के पश्चात् रोज सभी के लिए ऋषि लंगर का आयोजन किया जाता था।

आचार्य रत्लम जी के प्रवचन वेद मन्त्रों में मानव जाति के उद्धार के लिए दी गई शिक्षाओं पर और देश तथा समाज की अनेकों समस्याओं को सुलझाने के लिए होते थे और आर्य भजनोपदेशक पं. जगत वर्मा जी ने अपने मधुर ईश्वर भक्ति, देश भक्ति और स्वामी दयानन्द जी के बारे में सुनाए भजनों के द्वारा श्रोताओं को बहुत आनन्द विभोर किया।

इस अवसर पर श्री यशपाल सिंगला, प्रधान आर्य समाज समाना, श्री राजेन्द्र वर्मा प्रधान आर्य समाज सनौर, श्री अशोक छावड़ा प्रधान आर्य समाज राजपुरा टाऊन, और आर्य समाज नाभा के पदाधिकारी और सदस्यों सहित विशेष रूप से पहुंचे। आयोजन की सफलता में प्रधान श्री राजकुमार सिंगला जी के अतिरिक्त श्री वीरेन्द्र सिंगला, वरिष्ठ उप-प्रधान, कर्नल श्री आनन्द मोहन सेठी उप प्रधान, श्री वेद प्रकाश तुली मन्त्री, श्री विजेन्द्र शास्त्री प्रचार मंत्री, श्री जितेन्द्र शर्मा कोषाध्यक्ष, श्री हर्ष वर्धन स्टोर प्रभारी, श्री गुलाब सिंह पुस्तकाल्याध्यक्ष, श्री वैज नाथ पाल सह पुस्कालयाध्यक्ष, प्रिंसीपल निखिल रंजन शास्त्री उपमंत्री, श्री प्रवीण कुमार प्रचार उपमंत्री, श्री रमेश चन्द्र गन्डोत्रा, श्री यशपाल जुनेजा प्रो. विद्या सागर, प्रिंसी. के. के. मोदगिल, डी. ए. वी. पटियाला स्कूल के प्रिंसीपल श्री एस. आर. प्रभाकर, इस स्कूल की संगीत अध्यापिका श्रीमती रजनीत कौर, स्त्री आर्य समाज की वहनें, आर्य कन्या सीनियर सैकण्डरी स्कूल की प्रिंसीपल और अधियापिकाएं तथा अन्य सभी भाई बहनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। विशेषकर पुरोहित श्री गजेन्द्र शास्त्री जी उनके परिवार और सेवक श्री राम गरीब का, जिन्होंने आए हुए विद्वानों की भोजन आदि की व्यवस्था और भवन की शानदार सजावट और सफाई का ध्यान रखा।

जिन-जिन भाई बहनों ने भवन के मुख्य प्रवेश द्वार के नव निर्माण के लिए दान दिया, उन सभी को आचार्य श्री वीरेन्द्र रत्लम जी और पं. जगत वर्मा जी ने सम्मानित किया। आर्य समाज की ओर से आचार्य जी और श्री वर्मा जी को दोशालों से सम्मानित किया गया। भिन्न-भिन्न आर्य समाजों से पधारे प्रधान/मंत्री आदि को इन विद्वानों और आर्य समाज की कार्यकारिणी के सदस्यों द्वारा दोशालों से सम्मानित किया गया।

शान्तिपाठ के पश्चात् लगभग 250 भाई बहनों ने ऋषि लंगर का आनन्द लिया। इस लंगर के व्यय के लिए श्रीमति बिंदु सिंगला और श्री संजय जी ने इक्कीस हज़ार रूपये दान दिया। आर्य समाज के और भी सभी पदाधिकारों और सदस्यों की ओर से बहुत दान प्राप्त हुआ।

अन्त में इस वेद प्रचार सप्ताह एवं चतुर्वेदशतक पारायण यज्ञ को सफल बनाने के लिए प्रधान श्री राज कुमार सिंगला जी ने सभी का हार्दिक धन्यवाद किया।

-वेद प्रकाश तुली मंत्री

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज मोगा का 112वां वार्षिक उत्सव सम्पन्न

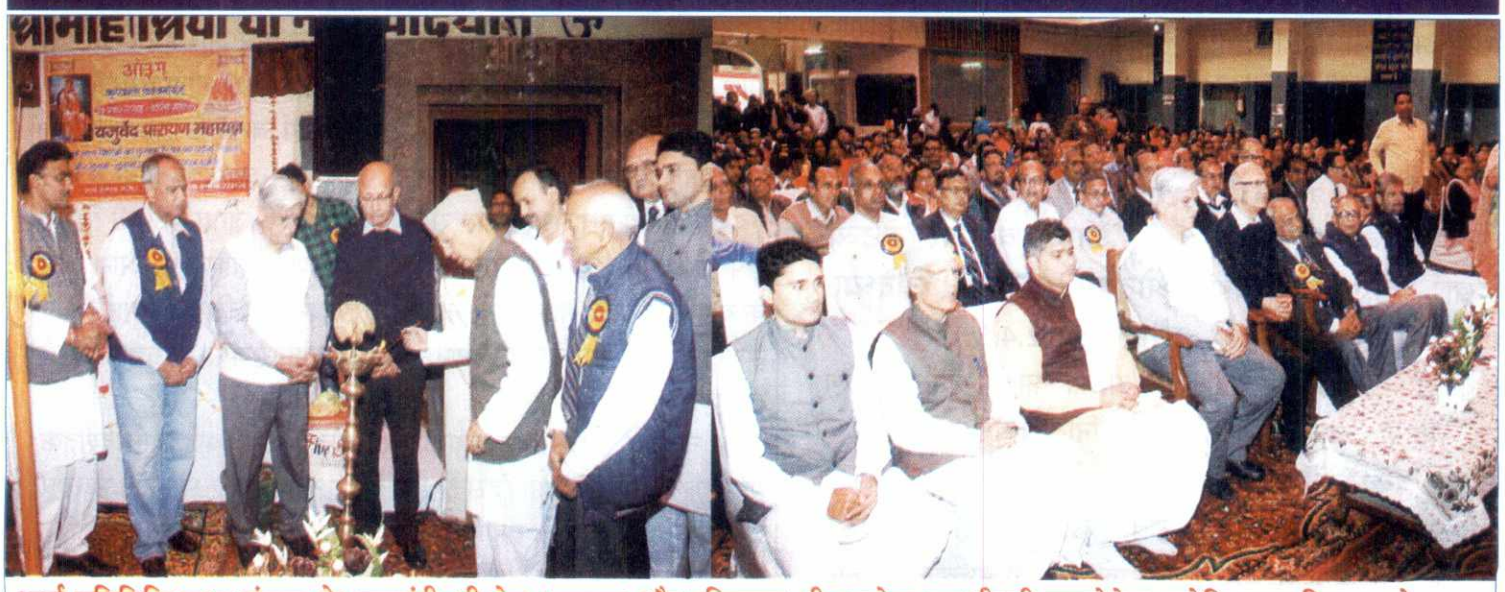

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज और रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट ज्योति प्रज्जवलित करके मुख्य कार्यक्रम का शुभारम्भ करते हुये जबकि दूसरे चित्र में बैठे हुये आर्य जन एवं सभा पदाधिकारी।

आर्य समाज मोगा पंजाब का 112वां वार्षिक उत्सव दिनांक 21 नवम्बर से 27 नवम्बर 2016 तक बड़े उत्साहपूर्वक एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर आर्य जगत् के उच्चकोटि के भजनोपदेशक एवं कवि पं सत्पाल जी पथिक अमृतसर, आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक जी होशंगाबाद एवं आचार्य सुरेश शास्त्री जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब पधारे हुए थे। इस पावन और पुनीत अवसर पर यजुर्वेद पारायण महायज्ञ प्रात:काल एवं सांयकाल दोनों समय चलता रहा। अनेकों यजमान दम्पत्तियों ने यजमान बनकर यज्ञ में आहुतियां डाली। दिनांक 21 नवम्बर को प्रात: 10:00 बजे ध्वजारोहण ए.डी. सी. मोगा श्री अजय सूद जी के करकमलों द्वारा किया गया। आर्य समाज के पदाधिकारियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। दिनांक 28 नवम्बर 2016 रविवार को यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति की गई। सप्ताह भर बनने वाले सभी यजमानों ने इस अवसर पर यज्ञ में आहुतियां ड़ाल कर यज्ञ को पूर्ण किया। यज्ञ ब्रह्मा एवं विद्वानों ने सभी यजमानों को आशीर्वाद प्रदान किया और प्रसाद वितरण किया। तत्पश्चात सभी आर्यजनों ने मिलकर प्रात:राश ग्रहण किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामन्त्री श्री प्रेम भारद्वाज जी एवं श्री अशोक परूथी जी रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद इस अवसर पर विशेष रूप से पधारे।

आर्य समाज मोगा के पदाधिकारियों एवं अन्य आर्यजनों के द्वारा दोनों महानुभावों का पुष्पवर्षा करते हुए हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन किया गया। मुख्य कार्यक्रम का शुभारम्भ गणमान्य महानुभावों द्वारा ज्योति प्रज्वलित करके किया गया। मोगा की आर्य शिक्षण संस्थाओं के बच्चों ने स्वागत गीत एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम के द्वारा अपनी मनमोहक प्रस्तुति दी। सभी संस्थाओं के बच्चों को श्री प्रेम भारद्वाज एवं श्री अशोक परूथी जी के द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के नवनिर्मित हाल एवं कम्प्यूटर लैब का उद्घाटन श्री प्रेम भारद्वाज एवं रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी द्वारा किया गया। आर्य विद्या परिषद के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी ने अपने विचार रखते हुए कहा कि आर्य समाज के पदाधिकारी बधाई के पात्र हैं जिन्होंने इतने सुन्दर कार्यक्रम का आयोजन किया। ऐसे कार्यक्रमों के अवसर पर हमें आर्य विचारों को अपने जीवन में धारण करने का यत्न करना चाहिए। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामन्त्री एवं कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री प्रेम भारद्वाज जी ने अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में सभी को एकजुट होकर कार्य करने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि हम अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाते हुए संगठन को मजबूत बनाएं। महामन्त्री जी ने बच्चों द्वारा पेश किए योगासन आदि कार्यक्रमों की सराहना की और कहा कि यही बच्चे आर्य समाज और राष्ट्र के भविष्य हैं। बच्चों को पढ़ाई के साथ-साथ नैतिक शिक्षा और आर्य सिद्धान्तों से भली-भांति अवगत कराया जाए जिससे वे अपने जीवन का सर्वांगीण विकास कर सकें। इस अवसर पर आर्य समाज के अधिकारियों ने श्री प्रेम भारद्वाज एवं श्री अशोक परूथी जी का शॉल ओढ़ाकर एवं स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया। मंच का संचालन आर्य समाज मोगा के विद्वान् पुरोहित पं. दिवाकर भारती जी द्वारा किया गया। आर्य समाज के प्रधान श्री नरेन्द्र सूद जी ने आए हुए सभी गणमान्य अतिथियों का हार्दिक आभार व्यक्त किया। शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। कार्यक्रम के पश्चात सभी आर्यजनों ने ऋषि लंगर ग्रहण किया। इस अवसर पर सर्वश्री सत्य प्रकाश उप्पल, मन्त्री श्री पुरूषोत्तम राय, कोषाध्यक्ष श्री जोगेन्द्र सिंगला, प्रियतम देव, विनोद धवन आदि अन्य महानुभाव उपस्थित थे।

पुरूषोत्तम राय
मन्त्री आर्य समाज मोगा

आर्य समा फरीदकोट का वार्षिक महोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज फरीदकोट का तीन दिवसीय संस्कृति रक्षा सम्मेलन एवं वार्षिक महोत्सव का विधिवत रूप से 27 नवम्बर को समापन हो गया। आर्य समाज मेन बाजार फरीदकोट में वेद ज्ञान की गंगा बह रही थी जिसमें आर्य जगत के वैदिक प्रवक्ता आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय दिल्ली, भजनोपदेशिका प्रियंका भारती भरतपुर राजस्थान, आचार्य सुनील कुमार शास्त्री और महावीर प्रसाद पधारे। प्रतिदिन प्रात: एवं सायंकाल आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय जी के ब्रह्मत्व में आचार्य सुनील शास्त्री ने वैदिक ऋचाओं का समधुर पाठ करते हुये यज्ञ सम्पन्न कराया। यज्ञ के बाद प्रियंका भारती जी के मधुर व प्रेरणादायक भजन व उपदेश हुये। आचार्य वेद प्रकाश जी ने वेद मंत्रों के मर्म को बहुत ही सरल भाषा व उपमाओं के माध्यम से जन सामान्य के सामने पेश किया। जिसमें स्थानीय लोगों के अलावा दूर दूर से आए हजारों लोगों ने यज्ञ में आहुतियां देकर वेदोक्त व्याख्यानों का रसपान कर धर्म लाभ प्राप्त किया। इस कार्यक्रम में स्थानीय लोगों के साथ साथ आर्य समाज फिरोजपुर, आर्य समाज कोटकपूरा, आर्य समाज जीरा, आर्य समाज मोगा के आर्यजनों का विशेष सहयोग रहा। विशेषकर श्री ललित बजाज जी कोटकपूरा वाले, श्री कपिल सहूजा प्रधान आर्य समाज फरीदकोट, श्री सतीश शर्मा मंत्री आर्य समाज फरीदकोट, श्री अमर आर्य वर्मा कोषाध्यक्ष व श्री प्रमोद कुमार सह कोषाध्यक्ष आर्य समाज फरीदकोट के अथक प्रयासों से कार्यक्रम बहुत ही सफल व सराहनीय रहा। कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये आचार्य कमलेश कुमार शास्त्री पुरोहित आर्य समाज फरीदकोट का बहुत ही प्रशंसनीय योगदान रहा। श्री सतीश शर्मा मंत्री आर्य समाज फरीदकोट ने वर्ष 2017 में यजुर्वेद परायण यज्ञ करवाने का संकल्प लिया।

आर्य समाज मेन बाजार फरीदकोट के वार्षिक उत्सव पर प्रवचन करते हुये आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।